जायसी

जायसी के संदर्भ में यह बात फिर उभर कर आती है कि कविता-मात्र सांप्रदायिक नहीं होती। मुसलमान होकर हिंदू शौर्य की गाथा—दिल्ली के सुलतान के विरुद्ध—एक नाजुक प्रसंग है। पर जायसी 'पद्मावत' के चित्रण में एकदम खरे उतरते हैं। यहाँ दोनों पक्षों का पूरे आदर और आत्मीयता से उल्लेख हुआ है—'हिंदू तुरक दुवौ रन गाजे'। और अगर आत्मीयता कहीं कुछ अधिक है तो चित्तौड़ के साथ, न कि दिल्ली के। भक्तिकालीन कवियों के मूल्यांकन में आचार्य शुक्ल की प्राथमिकताओं का क्रम एकदम स्पष्ट है। तुलसी उनके विवेचन के केन्द्र में हैं, पर जायसी कुछ ही ऊने पड़ते हैं, जबकि सूर की तुलना में उन्हें गौरव अधिक मिलता है। कबीर में प्रतिभा की प्रखरता के तो वे कायल हैं, पर व्यंजना से, भावुकता के नहीं—"प्रतिभा उनमें बड़ी प्रखर थी, इसमें संदेह नहीं"—'हिंदी साहित्य का इतिहास' में कबीर संबंधी विवेचन का यह अंतिम वाक्य है।

जायसी की प्रमुख कृति 'पद्मावत' की रचना-प्रक्रिया का संवेदनशील विश्लेषण कई समर्थ समीक्षकों द्वारा हुआ है, पुरानों में विशेषतः रामचंद्र शुक्ल और नयों में विजय देवनारायण साही द्वारा। इस संदर्भ में जिस एक और कोण की ओर संकेत किया जा सकता है,

वह है 'पद्मावत' के विधान में लोक और शिष्ट या अभिजात तत्वों का विलक्षण संयोग। भक्तिकालीन रचना-प्रक्रिया के ऐतिहासिक विवेचन में इस बिंदु का महत्व कुछ और बढ़ जाता है। लोक-रचना में भाषा का कम से कम सर्जनात्मक रूप अपेक्षित है, अभिजात में अधिकतम। यों काव्यभाषा की प्रयोग-विधि में यहाँ 'पृथ्वीराज रासउ' और 'रामचरितमानस' के बीच की रचना-प्रक्रिया है, जो इन तीनों रचनाओं के काल-क्रम के अनुकूल है। प्रक्रिया यह है कि लोक जैसे लंबे-लंबे वर्णन (द्र० 'पद्मावत' का आरंभिक अंश), और फिर एक अंश सर्जनात्मक काव्य का जो पूरे प्रसंग को रचनात्मक दीप्ति से आलोकित कर देता है—पूर्व-प्रभावी ढंग से। उदाहरण के लिए सिंहल-द्वीप में अमराई का प्रसंग लिया जा सकता है। दो दोहों के बीच सात अर्द्धालियों में कवि अमराई में बैठने वाले विविध पक्षियों का वर्णन करता है—

बसहिं पंखि बोलहिं बहु भाखा। करहिं हुलास देखि कै साखा॥
भोर होत बोलहिं चुहचूही। बोलहिं पाँडुक 'एकै तूही'॥

और इस क्रम को पूरा करने के बाद अंत में कहता है—

जावत पंखी जगत के भरि बैठे अमराउँ।
आपनि आपनि भाषा लेहिं दई कर नाउँ॥

इन सारे पक्षियों के ध्वनि-वैविध्य को कवि एक बिंब में ढालता है कि मानों वे सब अपनी-अपनी भाषा में एक ही दैव या परम तत्व का नाम जप कर रहे हों। इस बिंब में पहुँच कर जैसे पिछले समूचे वर्णन को एक निष्पत्ति मिल जाती हो। और तब पिछले इतिवृत्त में भी कविता चुपके से परिव्याप्त हो जाती है। आचार्य शुक्ल की सजग दृष्टि कवि के रचना-विधान को समझने में यहाँ चूक गई है। 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका में उन्होंने लिखा है, "जायसी के कथा-प्रवाह में इस प्रकार के अनावश्यक विराम बहुत से हैं। बहुत स्थलों पर तो ऐसा विराम कुछ दिनों से चली हुई उस भद्दी वर्णन-परंपरा का अनुसरण है जिसमें वस्तुओं के बहुत से नाम और भेद गिनाए जाते हैं—जैसे, सिंहलद्वीप-वर्णन खंड में फलों, फूलों और घोड़ों के नाम, रत्नसेन के विवाह और बादशाह की दावत में पकवानों और व्यंजनों की बड़ी लंबी सूची। कुछ स्थलों पर तो केवल विषयों की जानकारी के लिए ही अनावश्यक विवरण जोड़े गए हैं—।" यदि इस विधान को ध्यान से देखा जाए तो स्पष्ट होगा कि इस प्रकार वर्णनों की योजना वस्तुत: लोक-परंपरा के आग्रह से है। गाकर सुनाई जाने वाली लोक-गाथाओं में ऐसे वर्णन रखने के दो प्रयोजन समझ में आते हैं। एक तो इनसे लोक-जीवन में विविध प्रकार के ज्ञान को प्रसारित किया जाता है, और दूसरे कथा-विधान में औत्सुक्य का संचार होता है, कुछ देर कहानी के प्रवाह को रोक कर। पर जैसा पहले दिखाया गया, लोक-परंपरा की दृष्टि से ऐसे 'अनावश्यक विराम' नियोजित करके बाद में उनके इतिवृत्त को किसी सर्जनात्मक अंश से रचनात्मक रूप में आलोकित किया जाता है। इस प्रक्रिया में क्रमश: अर्द्धालियों और दोहों की व्यवस्था बहुत बार इसी रूप में की गई है। रचना में लोक और शिष्ट विधानों के संगमन का यह बड़ा कुशल उदाहरण है।

लोक-परंपरा से जुड़ने की जायसी में कुछ अन्य वृत्तियाँ भी मिलती हैं। अवधी बोली के ठेठ रूप का प्रयोग आलोचकों ने इस क्रम में कई बार उल्लिखित किया है। जायसी में तुलसी की तरह तत्सम शब्दावली की मिलावट—आचार्य शुक्ल के शब्दों में "मंजु, अमंद" आदि की चाशनी—नहीं है। पर संस्कृत शब्दावली से जायसी अपरिचित थे, ऐसा नहीं जान पड़ता। तद्भवों के अतिरिक्त बहुत बार 'गोपीतन्ह', 'पिरथिमी' जैसे अर्द्ध-तत्सम उन्होंने स्वयं गढ़े हैं,

काव्यभाषा को मनवांछित संस्कार देने के लिए। इस प्रकार की शब्दावली लोक-बोली से ली गई नहीं जान पड़ती वरन् लोक-संस्कार के अनुसार स्वयं जायसी द्वारा रची जान पड़ती है। कबीर ने भी ऐसे शब्द बनाए थे संस्कृत के प्रति अवज्ञा प्रकट करने के लिए, जायसी के यहाँ ऐसी शब्दावली लोकानुराग प्रकट करती है। वहाँ लोकानुराग की दृष्टि प्रबल नहीं थी, यहाँ संस्कृत के प्रति अवज्ञा की नहीं है।

'पद्मावत' के कथा-विधान में सर्ग जैसे विभाजन को अस्वीकार करके लगातार वर्णन-क्रम को चलाना आलोचकों द्वारा फारसी मसनवी शैली का प्रभाव माना गया है। पर इस शैली के पीछे देसी लोक-गाथाओं का संस्कार भी देखा जा सकता है, जिनमें शास्त्रीय दृष्टि का कोई विभाजन नहीं है, कथा लगातार चलती है। लोक और शिष्ट को एक-दूसरे के आमने-सामने करके इस टकराहट में से कुछ सिरजने का एक और उपक्रम हमें 'पद्मावत' के कथा-विधान में पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध की भिन्न प्रकृति रखने में मिलता है। जायसी ने अपने कथानक का विधान इस तरह किया है कि पूर्वार्द्ध लोक-कथा के रूप में काल्पनिक वृत्त है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक बनावट लिए हुए है। ये दो अलग-अलग संसार हैं और उनकी विश्वसनीयता की अलग-अलग शर्तें हैं। लोक-कथा की रंगत लिए पूर्वार्द्ध में अनेक अतिप्राकृत चरित्र और घटनाएँ हैं—देवी, देवता, राक्षस, मनुष्य की बोली बोलने वाला तोता, सिद्धि गुटिका आदि। उत्तरार्द्ध में ये अतिप्राकृत तत्व एकदम अनुपस्थित हैं, उनका कहीं कोई उल्लेख नहीं होता। रोचक बात यह है कि समुद्र द्वारा दिए गए पाँच अमूल्य पदार्थ—अमृत,हंस, राजपक्षी, शार्दूल और पारस पत्थर रत्नसेन के पास हैं जब कि बरसों तक अलाउद्दीन चित्तौड़ का घेरा डाले रहा, और इनके उपयोग की बात राजा को नहीं सूझी। लगता है कि लोक-वृत्त से निकलकर ऐतिहासिक वृत्त में आने पर इनकी अलौकिकता समाप्त हो गई हो। बल्कि अलाउद्दीन से संधि के समय रत्नसेन की ओर से ये पाँच अमूल्य वस्तुएँ दे दी जाती हैं। अमृत और शार्दूल के लिए इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है!

लोक-वृत्त और ऐतिहासिक वृत्त का इस तरह आमना-सामना जायसी के अपने रचना-विधान की निजी उपज है। संसार के महाकाव्यों में शायद ही कहीं यथार्थ के ऐसे द्विखंडी रूप का चित्रण हुआ हो। लोक और शिष्ट-ऐतिहासिक वृत्त को यों बगल-बगल रखने के पीछे कवि की कई दृष्टियाँ हो सकती हैं। एक सीधा लक्ष्य हो सकता है तुलना के माध्यम से इन दो संसारों के वैषम्य को और गहरा करके दिखाना। इससे फिर गहरी दृष्टि होगी इन दोनों के नैतिक विधान का अन्तर दरसाना। लोक वृत्त की दुनिया में कष्ट है तो कृपा भी है, जब कि ऐतिहासिक वृत्त में कष्ट ही कष्ट है उससे उबरना नहीं है। यों पूर्वार्द्ध पूर्णत: सुखांत है जब कि उत्तरार्द्ध चरम दु:खांत। यहाँ विजयदेवनारायण साही ने ठीक लक्षित किया है कि 'पद्मावत' हिंदी में अपने ढंग की अकेली ट्रैजिक कृति है। पर सुखांत और दुखांत का यह मेल महाकाव्य को भी जैसे एक दरजा और ऊँचा उठा देता हो। यहाँ महाकाव्य का न केवल शास्त्रीय सूचीबद्ध वर्णन है—संध्या, प्रात:, प्रदोष, युद्ध, मृगया आदि वरन् यथार्थ का पूरा द्विआयामी चित्रण है। मनुष्य जीवन की समग्रता और उसकी नियति का इससे अधिक पूर्ण और प्रभावी अंकन और कैसे हो सकता है?

इस पूर्णता की पूर्णतर प्रतीति के लिए ही कवि बीच-बीच में लंबे और सांगोपांग वर्णन ले आता है, जिनकी रचनात्मक संगति आचार्य शुक्ल ने नहीं देखी। 'ऊँचे' या 'माटी', 'जोबन' या 'मसि' जैसे प्रसंगों पर कवि के लंबे और सिलसिलेवार पर्यवेक्षण लोक-शैली के अनिवार्य अंग है। ये छोटे-छोटे ज्ञान-कोष लोक-जीवन से लिए गए हैं और बदले में उसे समृद्ध भी करते चलते हैं। पर कथा में इनकी अंतत: संगति है और उनके इतिवृत्त में काव्य

सक्रिय हो जाता है बीच-बीच में बिंब-प्रयोग से। देवपाल की दूती द्वारा पद्मिनी को फुसलाने के प्रसंग में 'मसि' संबंधी चर्चा जो रामचंद्र शुक्ल की पहली कसौटी पर 'अनावश्यक विराम' ठहरेगी बाद में उन्हें उपयुक्त और दूती के सामान्य स्वभाव के अनुकूल लगती है। दूती कहती है—

लोना सोइ जहाँ मसि-रेखा। मसि पुतरिन्ह जिन्ह सौं जग देखा॥

× × ×

सो कस सेत जहाँ मसि नाहीं। सो कस पिंड न जहँ परछाहीं?

आचार्य शुक्ल अनुमोदन की मुद्रा में टिप्पणी करते हैं "अंतिम युक्ति तो दार्शनिकों की सी है।"

'पद्मावत' के पूर्वार्द्ध में लोक-अभिप्रायों का प्रयोग उस अंश की लोकरंगत को और प्रगाढ़ करने के लिए है। तोते के वर्णन से राजकुमार के मन में प्रेम का उत्पन्न होना, शिव-पार्वती द्वारा प्रेमी के प्रेम की परीक्षा, शिव का कोढ़ी वेष धारण करना, युद्ध में हनुमान का सहायक होना ऐसे ही लोक-अभिप्राय हैं। ये कोई अभिप्राय फिर उत्तरार्द्ध में नहीं आते। ऐतिहासिक वृत्त में जैसे कुछ भी पूर्वोक्त नहीं किया जा सकता, यहाँ न कोई समय है न अभिप्राय। लोक और शिष्ट की यह टकराहट जायसी के रचना-संसार को अद्‌भुत विस्तार देती है। कथानक के दो स्तरों की इस अंतर-प्रक्रिया में कवि ने जैसे महाकाव्य और मसनवी की सभी संभावनाओं को निःशेष कर दिया हो।

लोक और शिष्ट की अंतर-प्रक्रिया हिंदी कविता की बनावट के विकास में एक महत्वपूर्ण मंजिल है। पृथ्वीराज रासउ, पद्मावत, रामचरितमानस—यह इन कृतियों का कालक्रम ही नहीं है, रचनानुक्रम भी है। रासो में यदि लोक शैली प्रबल है और मानस में शिष्ट तो पद्मावत लोक से शिष्ट में संक्रमण का साक्ष्य है। यह संक्रमण रचना के हर महत्वपूर्ण पक्ष में देखा जा सकता है।

पर लोक-परंपरा से जुड़ने की एक विडंबना भी देखी जा सकती है कि 'पद्मावत' का पाठ-क्षेत्र अपेक्षया सीमित रहा है। बोली, शैली की दृष्टि से यह जितना ठेठ है इसकी पहुँच उतनी कम है। दूसरी ओर बोली और शैली दोनों में संस्कृत परंपरा से जुड़कर तुलसी का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। ठेठ बोली का 'ठाट' बोधगम्यता की दृष्टि से दोनों ओर असर डालता है। पर लोक और शिष्ट के संक्रमण में विकसित अर्थ-प्रक्रिया का अतुलनीय उदाहरण है 'पद्मावत'।